Inspira-Journal of Commerce, Economics & Computer Science (JCECS)
ISSN : 2395-7069 COSMOS Impact Factor: 4.964, Volume 06, No. 01, January-March, 2020, pp. 163-168

साम्प्रदायिकता और राज्यः भारत के संदर्भ में

प्रो. (डॉ.) कर्ण सिंह*
सरोज मीना**

परिचय

साम्प्रदायिकता एक विचारधारा है और किसी हद तक राजनीति इस विचारधारा के चारों ओर संगठित है। इस एक स्पष्ट तथ्य के बारे में अत्यंत साधारण सा कथन प्रतीत हो सकता है, फिर भी इसका अर्थ बहुत गहरा है। ''विचारधारा'' शब्द का प्रयोग यहाँ उस अर्थ में नहीं किया जा रहा है जिस अर्थ में मार्क्स ने इसका प्रयोग किया था, यहाँ इसका अर्थ एक विचार–प्रणाली है अथवा एक ऐसी विचार–प्रणाली जो समाज, अर्थव्यवस्था तथा राज्यव्यवस्था से सम्बन्धित कुछ परिकल्पनाओं पर आधारित है।

साम्प्रदायिकता समाज तथा राजनीति को देखने समझने का एक तरीका है। यदि ऐसा है तो इसके कुछ राजनैतिक तथा दूसरे परिणाम सामने आते हैं। आज हम अपने चारों तरफ साम्प्रदायिक विचारधारा के जिन तत्वों को देखते हैं, वे इस साम्प्रदायिक विचारधारा के पिछले सौ वर्षों से अधिक के अस्तित्व तथा प्रसार का परिणाम है। इसलिए केवल आज की सामाजिक तथा राजनैतिक परिस्थितियों के अर्थों में इसकी व्याख्या करना संभव नहीं है और जैसा कि मार्क्स ने कहा था, अपने स्थायित्व के कारण यह अपने आप ही एक भौतिक शक्ति बन चुकी है।

सम्प्रदायवादियों का मुख्य कार्य साम्प्रदायिक विचार–प्रणाली अथवा साम्प्रदायिक विचारधारा का प्रसार करना है। सम्प्रदायवादी गतिविधि के दूसरे पहलू गौण है और उसी का अनुकरण करते हैं। हमें साम्प्रदायिकता को साम्प्रदायिक हिंसा, दंगे इत्यादि के साथ नहीं उलझना चाहिए। इसमें कोई संदेह नहीं है कि साम्प्रदायिक हिंसा को साम्प्रदायिक विचारधारा के प्रसार के एक साधन के रूप में प्रयोग किया जाता है, यह भी सही है कि साम्प्रदायिक विचारधारा ही साम्प्रदायिक हिंसा की ओर ले जाती है। लेकिन किसी भी परिस्थिति में हमें दोनों को बराबर नहीं समझना चाहिए। साम्प्रदायिक हिंसा साम्प्रदायिक विचारधारा के प्रसार का परिणाम है। परन्तु यह किसी प्रकार भी साम्प्रदायिक स्थिति का मूल प्रश्न नहीं है। हिंसा का रूप धारण करने से पहले साम्प्रदायिक विचारधारा न केवल अपना अस्तित्व बनाये रखती है, बल्कि दशकों तक विकसित भी होती रही है।

यद्यपि 1830 के दशक से भारत में, प्रारंभ में इतिहास लेखन द्वारा साम्प्रदायिक विचारधारा का प्रसार एक हल्के ढंग से किया गया, परंतु 1870 तथा 1880 के दशकों में यह एक सुव्यवस्थित विचारधारा के रूप में उभरकर सामने आई। एक अथवा दो स्थानों पर छोटी–मोटी हिंसक झड़पों, जैसे 1893 में पूना और कलकत्ता में, को छोड़कर भारत में साम्प्रदायिक हिंसा एक शक्ति के रूप में 1920 के दशक में बन पाई।

इसी प्रकार 1939 से 1945 तक, दूसरे महायुद्ध के दौरान व्यवहारिक रूप में साम्प्रदायिक हिंसा का कोई अस्तित्व नहीं था, फिर भी निश्चित रूप ये यही वह समय था जब भारत में बड़ी तेजी से हिन्दुओं, मुसलमानों तथा सिक्खों में साम्प्रदायिकता विकसित हो रही थी। पंजाब इस समस्या का बहुत अच्छा उदाहरण है। यह विश्वास किया जाता था कि विभाजन ने पंजाब में साम्प्रदायिक समस्या का समाधान कर दिया है, क्योंकि 1947 से पूर्व हिन्दू तथा सिक्ख सम्प्रदायवादी एक ओर थे जो मुस्लिम विरोधी थे, और मुस्लिम

* शोध निदेशक, राजनीति विज्ञान विभाग, वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा, राजस्थान।
** शोधार्थी, राजनीति विज्ञान, वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा, राजस्थान।

साम्प्रदायवादी दूसरी ओर थे जो हिन्दू और सिक्ख विरोधी थे। इसलिए, यह मान लिया गया कि पंजाब से मुसलमानों के वास्तविक लोप के कारण साम्प्रदायिकता का अंत हो जाएगा। जब लोग पंजाब में साम्प्रदायिकता की बात करते थे तो ऐसा वे मुस्लिम विरोधी भावना के तहत ही करते थे, जिससे पश्चिमी पंजाब से उत्तरी पंजाब और वहाँ से दिल्ली इत्यादि की ओर हुए प्रवजन से बल मिलता था। परंतु वास्तव में 1947 के बाद से ही हिन्दू तथा सिक्ख साम्प्रदायिकता बड़ी तेजी से बढ़ रही थी। 1950 के दशक में दूरदर्शी, पर्यवेक्षक, मुख्य रूप से कम्युनिस्ट, पंजाब में साम्प्रदायिकता के प्रसार के विरुद्ध चेतावनी दे रहे थे।

साम्प्रदायिक विचारधारा तथा साम्प्रदायिक हिंसा में अंतर किया जाना चाहिए क्योंकि उनके राज्य से अलग ढंग के संबंध होते हैं। साम्प्रदायिक हिंसा को रोकने के लिए तात्कालिक राजनैतिक तथा प्रशासनिक कार्यवाही की आवश्यकता होती है। सम्भवतः इसके लिए शांति यात्राओं, शांति कमेटियों तथा दूसरी बातों की आवश्यकता होती है। जब साम्प्रदायिक हिंसा फैलती है तब वैचारिक संघर्ष का बहुत कम महत्व रह जाता है। परंतु साम्प्रदायिक विचारधारा से लड़ने के लिए एक लम्बे संघर्ष की आवश्यकता है।

जैसा कि ऊपर बताया गया है, एक बार जब साम्प्रदायिक विचारधारा एक लम्बे समय तक अपने पैर जमाये रहती है तो वह एक भौतिक शक्ति बन जाती है इसलिए इसका मुकाबला भी बड़ी सावधानी से किया जाना चाहिए। दूसरी अप्रत्यक्ष कार्यवाहियों की वजह से इस क्षेत्र में परिणाम यंत्रवत् सामने नहीं आते। 1930 के दशक में यह विश्वास किया जाता था कि साम्राज्यवाद विरोधी संघर्ष का विकास साम्प्रदायिकता से छुटकारा दिला देगा, या फिर वर्ग संघर्ष से साम्प्रदायिकता समाप्त हो जायेगी। 1947 के पश्चात् भी बहुत से लोगों का विश्वास था कि आर्थिक विकास अथवा शिक्षा के प्रसार के साथ ही साम्प्रदायिक विचारधारा लुप्त हो जायेगी। लेकिन तथ्य यह है कि जब साम्प्रदायिक विचारधारा स्पष्ट रूप से उभर आये, तो इसके विरुद्ध सचेत साम्प्रदायिकता विरोधी वैचारिक संघर्ष छेड़ना आवश्यक हो जाता है। चाहे आप दूसरे कोई भी कदम उठाये, साम्प्रदायिकता समाप्त नहीं होगी।

इस संबंध में राज्य की महत्वपूर्ण भूमिका होती है क्योंकि वह साम्प्रदायिक विचारधारा को बढ़ावा दे सकता है या फिर उसके विरुद्ध वैचारिक संघर्ष का समर्थन कर सकता है अथवा साम्प्रदायिक विचारधारा के मुकाबले में कमजोर साबित हो सकता है। एक बार जब हम विचारधारा के रूप में साम्प्रदायिकता के प्रश्न पर स्पष्ट हो जाये तो फिर एक साम्प्रदायिक दल को परिभाषित करने की दिशा में कदम उठा सकते हैं। यह देखने में बड़ी साधारण बात लगती है, परन्तु मुझे याद है कि कुछ सप्ताह पूर्व समाजशास्त्रियों द्वारा आयोजित एक सेमिनार में मेरा कुछ मित्रों से इसी बात पर वाद–विवाद हुआ, जो यह दलील दे रहे थे कि कांग्रेस एक साम्प्रदायिक दल है, इन्दिरा गांधी भी एक साम्प्रदायिक नेता थी, क्योंकि उन्होंने दिल्ली तथा जम्मू के चुनावों राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ से गुप्त समर्थन लिया था। यह बहुत आश्चर्यजनक है कि जब चुनावों में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने एक–दूसरे धर्मनिरपेक्ष दल, जनता दल का खुल्लम–खुल्ला समर्थ किया तब उन्हीं लोगों ने जनता दल को साम्प्रदायिक दल नहीं कहा।

वास्तव में, जनता दल को एक साम्प्रदायिक दल कहना उसी प्रकार गलत होगा जिस प्रकार पहले कांग्रेस को एक साम्प्रदायिक दल कहना गलता था, या अब है। मेरा विचार है कि एक बार जब हम साम्प्रदायिकता को एक विचारधारा मान लेते हैं तब इसकी परिभाषा भी स्पष्ट हो जाती है कि साम्प्रदायिक दल क्या है ? साम्प्रदायिक दल तथा घटक वे हैं जिनका गठन साम्प्रदायिक विचारधारा को आधार बनाकर किया गया है। यदि उनसे साम्प्रदायिक विचारधारा छीन ली जाये या उनसे इस विचारधारा को छोड़ने को कह दिया जाये, तो फिर उनके पास कुछ नहीं बचेगा, वे घटक अथवा दल भंग हो जाएँगे। 1937 में मुस्लिम लीग नेतृत्व तथा जिन्ना को भी ऐसी ही स्थिति का सामना करना पड़ा। उन्हें साम्प्रदायिक विचारधारा, धर्म, उग्रता इत्यादि को अपने कार्यक्रम में सम्मिलित करना पड़ा, यदि वे ऐसा नहीं करते तो मुस्लिम लीग तथा मुस्लिम साम्प्रदायिकता का विघटन हो जाता। 1981 में जब अकाली पंजाब में चुनाव हार गये, तब अकाली नेतृत्व को भी इसी दुविधा का सामना करना पड़ा।

इस संबंध में हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि वह तथाकथित नरमपंथी नेतृत्व ही था जिसने यह नारा बुलंद किया था कि भारत में सिखों का जातिसंहार हो रहा है तथा पंजाब में सिख धर्म खतरे में है। यह भिंडरवाला ही थे जिन्होंने 1981 और 1982 में यह नारा दिया था। हम भाजपा में सुधार लाने तथा राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ से मुस्लिम विरोधी दृष्टिकोण छोड़ने की अपीलों के संबंध में सुनते और पढ़ते रहते हैं। कुछ व्यक्तियों का मत है कि यदि भाजपा से साम्प्रदायिकता हटा दी जाये, तो वह एक अच्छी पार्टी बन सकती है जो कि वर्तमान में है। यहाँ एक बात और कही जानी चाहिए, यदि कोई साम्प्रदायिक दल सत्ता प्राप्त करने के लिए साम्प्रदायिकता का प्रयोग करता है और यदि वह साम्प्रदायिकता को यह सोचकर छोड़ना भी चाहे कि इस आधार पर समाज का निर्माण नहीं किया जा सकता, तो भी वह ऐसा नहीं कर सकेगा। यह विश्वास कि वह दल ऐसा कर सकेगा, एक भ्रम है, क्योंकि जब साम्प्रदायिक विचारधारा एक लंबी अवधि तक अपना अस्तित्व बनाये रखती और विशेष रूप से जब वह नेतृत्व, जिसने सत्ता प्राप्त करने के लिए साम्प्रदायिक विचारधारा का प्रयोग किया है। हमें इसका बहुत अच्छा उदाहरण मुहम्मद अली जिन्ना में मिलता है, जिसने 1931 से 1947 तक साम्प्रदायिक विचारधारा को उसके अत्यधिक गंदे रूप में प्रयोग किया। उसने घोषणा की कि अब पाकिस्तान एक धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र होगा, जहाँ राजनीति का निर्धारण धर्म के द्वारा नहीं होगा, जहाँ विभिन्न धर्मों के अनुयायियों के साथ समान व्यवहार किया जायेगा तथा नागरिकों के रूप में उनकी स्थिति की धर्म से कोई प्रासंगिकता नहीं होगी। परंतु स्वयं जिन्ना भी साम्प्रदायिक विचारधारा के सैलाब को नहीं रोक पाया, जिसके लिए वह स्वयं जिम्मेदार था।

एक बार जब हम साम्प्रदायिकता को एक विचारधारा के रूप में समझ लेते हैं तो हम यह भी महसूस करते हैं कि कोई भी विचारधारा एक विचार पर आधारित नहीं होती। विचारप्रणाली भी परिकल्पनाओं, परिणामों तथा दलीलों से मिलकर बनती है। परिकल्पनाएँ भी ऐसी होती हैं। इसलिए साम्प्रदायिक विचारधारा भी बहुत से साम्प्रदायिक तत्वों से मिलकर बनती है। यह तथ्य किसी भी विचारधारा के संबंध में सही है कि ये साम्प्रदायिक तत्व विशेष रूप से जब वे एक लंबी अवधि तक एक समाज में रहें तो हममें से अधिकांश लोगों में मौजूद रहते हैं।

इसलिए यह सोचना गलत होगा कि केवल एक अथवा थोड़े से साम्प्रदायिक तत्व साम्प्रदायिक विचारधारा के बराबर होते हैं। जिन्हें हम धार्मिकता और रूढ़िवाद कहते हैं वे साम्प्रदायिकता जैसे नहीं होते। केवल जब विशेष साम्प्रदायिक तत्वों को एक विशेष तरीके से जोड़ दिया जाता है अथवा संगठित कर दिया जाता है तभी एक सम्पूर्ण साम्प्रदायिक विचारधारा का जन्म होता है। साम्प्रदायिक दलों का एक प्रमुख कार्य यह होता है कि वे धर्मनिरपेक्ष व्यक्तियों में इन साम्प्रदायिक तत्वों को हवा देते हैं, उनके व्यक्तियों में उनकी वृद्धि करके दूसरे साम्प्रदायिक तत्वों को स्वीकार करने के लिए विवश करते हैं। धर्मनिरपेक्ष विचारधारा का कार्य पहले से मौजूद इन तत्वों का विरोध करना है, यह संकेत करना भी है कि यदि कोई पहले से मौजूद इन तत्वों से छुटकारा नहीं पा सकता तो उसे उन तत्वों को स्वीकार नहीं करना चाहिए, जिन्हें सम्प्रदायवादी प्रचारित कर रहे हैं।

वर्तमान समय में, बहुत से मध्यवर्गीय व्यक्ति, जो पहले धर्मनिरपेक्ष थे, हिन्दू साम्प्रदायिक नारों से प्रभावित हो रहे हैं। उदाहरण के लिए इस धारणा को लीजिए जनवरी–फरवरी, 1978 से प्रचारित किया जा रहा है कि एक मुस्लिम अपने आपको मुस्लिम कहता है और वह सम्माननीय है, एक सिख अपने आपको सिख कहता है और वह सम्माननीय है, परंतु जब एक हिन्दू अपने आपको हिन्दू कहता है तो उस पर साम्प्रदायवादी की छाप लगा दी जाती है। यह दृष्टिकोण एक पूर्व–प्रचलित धारणा पर आधारित है और अब इसे व्यापक रूप से स्वीकार किया जा रहा है।

साम्प्रदायिकता अथवा अवसरवाद में भेद करना आवश्यक है। इसका उस तरीके से बहुत घनिष्ठ संबंध है जिससे साम्प्रदायिकता विकसित की जा रही है और भारतीय राज्य के ढांचे को प्रभावित करने लगी है। साम्प्रदायिक विचारधारा पर आधारित साम्प्रदायिक दलों तथा साम्प्रदायिकता के प्रति अवसरवादी दृष्टिकोण अपनाने वाले धर्मनिरपेक्ष अथवा कमजोर धर्मनिरपेक्ष दलों में गहरा अंतर है।

यह कहा जाता है कि नेहरू भी मुस्लिम बहुमत वाले क्षेत्रों में मुस्लिम तथा ब्राह्मण प्रभुत्व वाले क्षेत्रों में ब्राह्मण उम्मीदवारों को खड़ा करते थे। इसलिए वे भी साम्प्रदायवादी अथवा जातिवादी थे और वे लोग भी सम्प्रदायवादी या जातिवादी है जो ऐसा करते हैं। वास्तविकता यह है कि यह केवल चुनावी अवसरवाद है, और यद्यपि अवसरवाद का भी विरोध करना चाहिए, परंतु केवल अवसरवाद के रूप में ही, न कि साम्प्रदायिकता के रूप में। इसके अतिरिक्त इस प्रकार का अवसरवाद सभी राजनैतिक दलों में पाया जाता है, जिनमें वामपंथी दल भी सम्मिलित हैं।

भारत में साम्प्रदायिकता फासीवाद का एक रूप है। यदि हम साम्प्रदायिकता को केवल एक दूसरी अपर्याप्त अथवा हानिकारक विचाराधारा के रूप में देखें तो हम उसे नहीं समझ पाएँगे। प्रादेशिक अथवा भाषाई विचारधाराएँ अपनी सीमाओं को लांघने के बाद भी, अपने चरित्र में साम्प्रदायिक विचारधारा से भिन्न होती है। यह कोई संयोग नहीं है कि शिवसेना ने दक्षिण भारतीयवाद के विरोध के आधार पर एक फासीवाद विचारधारा को विकसित करने का प्रयत्न किया और उसने प्रादेशिकता को छोड़कर फासीवाद के भारतीय रूप अर्थात् हिन्दू साम्प्रदायिक विचारधारा को अपना लिया। साम्प्रदायिक तर्कहीन है और उसका आधार घृणा होती है, वह हिंसा का गुणगान करती है। इसलिए, हमें साम्प्रदायिकता को फासीवाद का भारतीय रूप ही समझना चाहिए। जहाँ तक अल्पसंख्यों का संबंध है फासीवादी रूप केवल अलगाववाद का ही रूप ले सकता है। पंजाब में सिख साम्प्रदायिकता भारत की विजय का रूप नहीं ले सकती है। दूसरी ओर, हिन्दू साम्प्रदायिकता पृथकवादी रूप नहीं ले सकती है, वह अनिवार्य रूप से फासीवाद रूप धारण करेगी।

यदि साम्प्रदायिकता एक विचारधारा है तो शिक्षा का महत्व बहुत बढ़ जाता है चाहे वह औपचारिक हो अथवा अनौपचारिक या उसे समाचार पत्रों से प्राप्त किया जाये। भारत में आजतक इस पहलू पर अधिक ध्यान नहीं दिया गया है। वैज्ञानिक विचारों पर आधारित सामाजिक विज्ञान तथा विज्ञान की पाठ्यपुस्तकों को तैयार करने में बहुत समय लगता है। परन्तु उनका भी कामोबेश सीमित प्रचलन है। उन्हें केवल थोड़े से केन्द्रीय और निजी स्कूलों में ही प्रयोग किया जाता है। यदि साम्प्रदायिकता एक विचारधारा है, तो एक दूसरा पहलू भी सामने आता है जो राज्य सत्ता के प्रश्न से सम्बन्धित है। वह पहलू यह है कि साम्प्रदायिकता के साथ कोई समझौता नहीं होना चाहिए। यह विचार कि आप इससे किसी प्रकार का समझौता कर सकते हैं, अव्यावहारिक है।

यहाँ मैं साम्प्रदायिकता तथा राज्य सत्ता की समस्या की ओर आती हूँ। मेरा मूल विचार एकबार फिर बहुत सरल है, साम्प्रदायिक दलों तथा गुटों को राज्य–सत्ता के निकट नहीं आने देना चाहिए। राज्य सत्ता से मेरा अभिप्राय केवल केन्द्र नहीं है। मेरा यह विचार नहीं है कि राज्य सत्ता केवल केन्द्र में अथवा केन्द्र की कार्यपालिका के पास होती है। राज्य सत्ता का एक विस्तृत चरित्र है। भारतीय संविधान में राज्यों के पास भी राज्य सत्ता होती है और यदि पंचायती बिल लाया जाता है, यद्यपि विभिन्न स्तरों पर राज्य सत्ता का महत्व भी भिन्न हो सकता है।

इसलिए मेरा मूल प्रस्ताव यह है कि हमें साम्प्रदायिक दलों तथा गुटों को राज्य सत्ता के निकट नहीं आने देना चाहिए और यह केवल इसलिए नहीं कि राज्य सत्ता द्वारा, उनका पुलिस तथा नौकरशाही पर नियन्त्रण हो जाता है। वास्तव में राज्य सत्ता पर नियन्त्रण रखने वाले सम्प्रदायवादी कुछ समय तक हिंसा को प्रोत्साहन नहीं देते। वे हिंसा को बढ़ावा भी नहीं देते और अपनी सतह पर ऐसा प्रतीत होने लगता है कि जहाँ साम्प्रदायवादियों का शासन है वहाँ साम्प्रदायिक दंगे तथा साम्प्रदायिक हिंसा कम होते हैं, साम्प्रदायिक हिंसा केवल कांग्रेस शासित अथवा जनता दल शासित राज्यों में ही होती है और इसलिए भाजपा नहीं, बल्कि कांग्रेस साम्प्रदायिक है। यह हो सकता है क्योंकि हिंसा साम्प्रदायिकता का लक्ष्य नहीं है। साम्प्रदायवादी साम्प्रदायिक हिंसा के स्तर को कम कर सकते हैं और विभिन्न उपकरणों द्वारा साम्प्रदायिक विचारधारा का प्रसार करते हुए साम्प्रदायिक हिंसा के विरूद्ध कार्यवाही भी नहीं कर सकते हैं। यह भी सम्भव है कि वे श्रमिक संघों पर आक्रमण न करें, किसान सभाओं पर आक्रमण न करें, कम्यूनिस्ट दलों पर भी आक्रमण न करें, परन्तु वे निश्चय ही धर्मनिरपेक्ष बुद्धिजीवियों पर आक्रमण करेंगे।

यह भी सम्भव है कि सम्प्रदायवादी सामूहिक हत्याकाण्डों और नजरबंदी– शिविरों का सहाना न लेकर स्वयं को केवल साम्प्रदायिक विचारधारा के प्रसार तक ही सीमित रखें। इसका एक कारण यह भी है कि साम्प्रदायिकता अभी तक भारतीयों के मन पर अपना प्रभुत्व नहीं जमा सकी है। जहाँ कहीं भी साम्प्रदायवादी सत्ता में आए हैं जहाँ भी पिछले सत्तर वर्षों में साम्प्रदायिक दलों ने चुनाव जीते हैं, वे जानते हैं कि जिन लोगों ने उन्हें वोट दिये हैं उन्होंने अभी तक एक वृहद पैमाने पर साम्प्रदायिक विचारधारा को नहीं अपनाया है। भारतीय अभी भी बुनियादी तौर पर धर्म निरपेक्ष है।

साम्प्रदायिकता का सम्बन्ध, किसी प्रकार भी राष्ट्रवाद से न तो था और न ही यह राष्ट्रवाद के एक विकल्प के रूप में उत्पन्न हुई और कार्य करती रही। जैसा कि इंडोनेशिया और बहुत से पश्चिमी एशियाई तथा उत्तरी अफ्रीकी देशों में हुआ, भारत में साम्प्रदायिकता धर्म पर आधारित राष्ट्रवाद भी नहीं थी। भारत में साम्प्रदायिकता राष्ट्रवाद के विरोध के रूप में विकसित हुई और इसमें साम्राज्यवाद विरोधी विषयवस्तु का अभाव था।

वास्वत में, लोक चेतना साम्प्रदायिक प्रचार के रास्ते में एक मुख्य बाधा रही है और इसी के कारण भारत के ग्रामीण क्षेत्रों तथा नगरों के अधिकांश भागों में अभी तक साम्प्रदायिक हिंसा नहीं फैली। इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि भारत के अधिकांश भागों में साम्प्रदायिकता की जड़े अधिक गहरी क्यों नहीं है तथा अपनी वर्तमान शक्ति को प्राप्त करने में उसे इतना अधिक समय क्यों नहीं लगा जबकि साम्प्रदायिकता का प्रारम्भ उन्नीसवीं सदी के अंतिम भाग में हो गया था।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

~ चन्द्रा विपिनः "कम्यूनलिज्म इन मॉर्डन इण्डिया", नई दिल्ली, विकास पब्लिशिंग हाऊस, (1984), पृ.सं. 169

~ मेहता एवं पटवर्धनः "दी कम्यूनल ट्राइंगल इन इण्डिया", इलाहाबाद, किताबिस्तान (1942), पृ.सं. 19

~ कोठारी रजनीः "कम्यूनलिज्म दी न्यू फेस ऑफ इण्डियन डेमोक्रेसी", दिल्ली, अजन्ता पब्लिकेशन, (1988), पृ.सं. 241–253

~ कृष्ण गोपालः "रिलीजन इन पॉलिटिक्स", दिल्ली एन.ए. पब्लिशर, (1981), पृ.सं. 29

~ श्रीनिवास एम.एन.: "आधुनिक भारत में जातिवाद" (भोपाल, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, (1987), पृ. सं. 159

~ डी. स्मिथ विलफ्रेडः "मार्डन इस्लाम इन इण्डिया", लाहौर, पेंगविन बुक हाऊस, (1943), पृ.सं. 41

~ दीक्षित प्रभाः "साम्प्रदायिकता का ऐतिहासिक संदर्भ", बम्बई, मेकमिलन, (1980), पृ.सं. 41

~ आजाद मौलानाः "इण्डिया विन्स फ्रिडम", दिल्ली ओरियन्टलोंगमैन, प्रेस, (1958), पृ.सं. 131

~ माथुर, पी.सी.: "सोशियल बेस ऑफ इण्डियन पॉलिटिक्स", जयपुर, आलेख प्रकाशन, (1984)

~ वर्मा, एस.एल.: "प्रॉब्लम ऑफ मेजरिंग कम्यूनलिज्म इन इण्डिया"

~ माथुर, वाई.वी.: "मुस्लिम एण्ड चेन्जिंग इण्डिया", न्यू दिल्ली त्रिमूर्ति पब्लिशिंग, (1972)

~ पुंताम्बेकरः "दी सैक्यूलर स्टैट", दिल्ली, राष्ट्रीय प्रिंटिंग प्रेस, (1949)

~ महात्मा गाँधीः "दी वे टू कम्यूनल हारमनी", अहमदाबाद, कलेक्टेड वर्क दिल्ली, (1958)

~ जैन, एम.एस.: "आधुनिक भारत में मुस्लिम राजनीतिक विचारक", दिल्ली, मनोहर प्रकाशन, (1980), पृ.सं. 27

~ सर सैय्यद अहमद खाँः "दी कॉज ऑफ दी इण्डिया रिवोल्ट", पृ.सं.12

~ शर्मा, जी.एन.: "राजस्थान का इतिहास", नई दिल्ली, कृष्णा प्रकाशन, (1983), पृ.सं. 12

~ कालूरामः "राजस्थान का इतिहास", जयपुर पंचशील प्रकाशन, (1984), पृ.सं. 226

~ अवस्थी, अमरेश्वरः "आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिन्तन", दिल्ली, नन्दा प्रकाशन, (1980)

~ अमिसाज, अहमदः "परस्पैक्टिव ऑन दी कम्यूनल प्रॉब्लम", दिल्ली, रिसर्च असेक्ट क्वाटेरटली, (अक्टूबर, 1972)

~ चटर्जी, पी.सी.: "सेक्यूलर वेल्यू और सैक्यूलर इण्डिया", दिल्ली कन्सप्ट पब्लिशिंग कम्पनी, (1985)

~ सोमरा, कर्णसिंहः "साम्प्रदायिक सद्भाव एवं राजनीतिक चेतना", प्रिन्टवैल, (1992)

~ मोहम्मद, चाँदः "राजस्थान में साम्प्रदायिकता जहर के विरूद्ध आह्वान", दैनिक नवज्योति, (मार्च 27, 1987)

~ सिन्हा, बी.के.: "सेक्यूलरिज्म इन इण्डिया", बम्बई, लालवानी पब्लिशिंग हाऊस, (1968)

~ राणदेवे, बी.टी.: "जाति और वर्ग", नई दिल्ली, नेशनल बुक सेन्टर, (1983)

~ चटर्जी, पी.सी.: सेक्यूलर वैल्यू ऑर सेक्यूलर इण्डिया", दिल्ली कन्सप्ट पब्लिशिंग कम्पनी, (1985)

~ अमिसाज, अहमदः "परस्पैक्टिव आन दी कम्यूनल प्रॉब्लम", दिल्ली, रिसर्च असेक्ट क्वार्टरली, (1972)

~ इम्तियाज अहमदः "सैक्यूलर स्टेट, कम्यूनल सोसायटी", फैक्टशीट 2, कम्यूनीलज्म दी रेंजर्स एज, बम्बई फॉकिस्ट कलेक्टर वर्क, (1983)

~ अवस्थी, डॉ. अमरेश्वरः "आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिन्तन", पृ.सं. 313

~ अन्सारी, एम.ए.: "मुस्लिम एण्ड दी कॉंग्रेस", दिल्ली विकास पब्लिशिंग, (1979)

~ इंजीनियर, अली असगरः "इस्लाम एण्ड इट्स रिलेवेंस टू आवर पेज", बम्बई इस्लामिक स्टैडिज, (1984)

प्रमुख लेख एवं जनरल

~ सूरि सुरेन्द्रः "साइक्लोजी ऑफ कम्यूनोलीजी", टाइम्स ऑफ इण्डिया, (जून 13, 1984)

~ नायर कुलदीपः "साम्प्रदायिक दंगों की पुनरावृत्ति", राजस्थान पत्रिका, (नवम्बर, 5, 1982)

~ लुबरा बी.पी.: "रिलीजियस इम्पार्शलिटी", सेमिनार इलाहाबाद विश्वविद्यालय, (1967), पृ.सं. 20

~ श्री निवासन, एस.: "उपराष्ट्रवाद की उग्र अभिव्यक्ति", इण्डिया टूडे, (फरवरी 8, 2017)

~ डेका, कौशिकः "बीजेपी का हिन्दू सिरदर्द", इण्डिया टूडे, (मार्च 22, 2017)

~ मेनन के. अपरनाथः "दलित गौरव के नाम पर", इण्डिया टूडे, (मार्च 22, 2017)

~ श्रीवास्तव अमिताभः "पटरियों पर बिछी साजिश", इण्डिया टूडे, (मार्च 15, 2017)

~ कोठारी रजनीः "क्लास एण्ड कम्यूनलिज्म इन इण्डिया", जनरल ऑफ इकनॉमिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली, अंक 23, क्रमांक 49, (दिसम्बर 3, 1989)

~ तालत, कमलः "सेक्यूलरजिम इन इण्डिया कन्सेपचुअल एण्ड आपरेशनल डाइमेन्शन", जनरल ऑफ स्टेट पॉलिटिक्स एण्ड एडमीनिस्ट्रेशन, (जनवरी–जून, 1983), पृ.सं. 1–18

~ विजय, एस.: आवर सेक्यूलर अरेटाइज

~ गर्ग, बी.एल.: "सिक्यूलरिजम इन इण्डिया", जनरल ऑफ स्टेट पॉलिटिक्स एण्ड एडमिनिस्ट्रेशन वॉल्यूम 1/1 नं. 1 (जनवरी–जून, 1983)

❑❑❑